© UNIVERSAL RESEARCH REPORTS | REFEREED | PEER REVIEWED
ISSN : 2348 - 5612 | Volume : 04 , Issue : 05 | Hindi | July - September 2017

त्रिक् दर्शन में स्पन्द का स्वरूप

अखिलेश खण्डुड़ी, शोधच्छात्र, अद्वैत वेदान्त विभाग, दर्शन संकाय

श्री लाल बहादुर शास्त्री राष्ट्रिय संस्कृत विद्यापीठ, नई दिल्ली–110016

ISSN : 2348-5612 © URR

वैदिक चिन्तन परम्परा में अद्वैत, द्वैत, द्वैताद्वैत, विशिष्टाद्वैत आस्किता, नास्तिकता आदि सभी सिद्धान्तों का बीजरूप संहिताओं से प्राप्त होता है । सम्पूर्ण विश्व की व्यवस्था को देखते हुए व्यक्ति किसी परम शक्ति के विषय में सोचने पर विवश हो जाता है । ग्रह नक्षत्र आदि का सुव्यवस्थित तरिके से भ्रमण, बीजांकुर आदि की उत्पत्ति ये सभी क्रियाएं किसी महाशक्ति की ओर संकेत करती है । इन वैदिक सिद्धान्तों को ही आगे बढ़ाते हुए भारतीय चिन्तकों ने अपनी विचारधाराओं से चिन्तन किया है ।

"एकः सद्विप्राः बहुधाः वदन्ति" इस निरुक्ति से एक देववाद स्पष्ट होता है । भारतीय ज्ञान परम्परा में बहुदेववाद भी प्रचलित है । परन्तु उसमें एक ही देवता के विभिन्न स्वरूपों को स्वीकार किया गया है । भारतीय विचारकों की इसी परम्परा में निगम और आगम ये दो विचारधाराएं हमें देखने को मिलती है । निगम वेद की परम्परा है । और आगम तन्त्र की परम्परा है। वास्तविक रूप से दोनों का स्वरूप एक ही है । क्योंकि तन्त्र भी अपना आधार वेद वो ही मानता है । काश्मीर की

अद्वैतवादी शैव परम्परा में शैव दर्शन की दो शाखा दृष्टिगोचर होती है । 1. प्रत्यभिज्ञाशास्त्र 2. रूपन्द शास्त्र ।

स्पन्द पूर्ण अहं विमर्श है । यह अहं विमर्श वह मौलिक स्फुरण है । जिसके द्वारा वह एक रहते हुए भी विश्व के अनन्त रूपों एवं आकारों में स्फुरित हो रहा है । यह शाश्वत स्फुरणशील होने के कारण ही स्पन्द नाम से पुकारा जाता है ।

अन्तस्थल में निस्पन्द सिन्धु के वक्षस्थल पर तरंगात्मक स्पन्दन की भांति निस्पन्द परमशिव को स्पन्दित करने वाली स्वात्मरूपा शक्ति स्पन्द है । स्पन्द शिव का अपना धर्म है । स्वभाव है, हृदय है । ऊर्मि है, विमर्श है, और स्वातन्त्र्य है । स्पन्द को कहीं पर शिव की शक्ति कहा गया है और कहीं उसे स्वयं शिव कहा गया है । यथा "स्पन्दः सामान्यपूर्वश्च शुद्धात्माशंकरः शिवः" यदि हम स्पन्द पद को वैयाकरणिक दृष्टि से देखें तो स्पदिकिंचिच्चलने धातु से स्पन्द शब्द की व्युत्पत्ति हुई है।

स्पन्द का स्वरूप :

यत्र स्थितमिदं सर्वं कार्यं यस्माच्चनिर्गतम्

तस्यानावृतरूपत्वान्न निरोधोऽस्ति कुत्रचित् ॥[1]

जिस स्पन्द तत्त्व में यह सम्पूर्ण कार्य जगत् अवस्थित है उसके निमेष दशा में भी ज्ञानरूप होने के फलस्वरूप अनाच्छादित रहने के कारण उसका कभी भी, किसी भी प्रकार से नहीं भी निरोध कहीं होता है । यदि

1. स्पन्दकारिका प्रथमनिःस्पन्द, 2 कारिका–2

एक प्रकार से विचार किया जाए कि वहपरम तत्त्व स्पन्द रूप प्रलय अवस्था में भी किस प्रकार स्थित रहता है । कैसे उसकी सत्ता बनी रहती है । इसका निराकरण करते हुए बताया गया है ।

यथा न्यग्रोधबीजस्य शक्तिरूपो महाद्रमः ।
तथा हृदयबीजस्थं जगदेतच्चराचरम् ॥

यस्माच्च निर्गतम् अर्थात् जिसके भीतर से बाहर निकला है । यदि प्रथम कला पूर्णाहन्ता में उसके सामरस्य में विश्व पहले से अवस्थित नहीं होता तो किस प्रकार से अविद्यमान जगत् की सृष्टि हो पाती ? अतः सृष्टि से पहले वह स्पन्द तत्त्व भिन्न स्वरूप से अवस्थित रहता है । यथा जिस प्रकार न्यग्रोध वृक्ष शक्त्यात्मना अवस्थित रहता है । किन्तु बाहर से उसमें अवस्थित नहीं दिखाई

देते ठीक उसी प्रकार शक्ति के गर्भ में यह विश्व बीजात्मना स्थित रहता है । भले ही प्रलयकाल में यह कहीं भी बाहर स्थित दिखाई न दे । इसलिए कहा गया है कि समस्त (विश्व) जगत् मात्र विश्वगर्भा एवं जगज्जननी शक्ति है । स्थान, समय, आकार आदि के स्वरूप में कोई भी वस्तु परमात्मा का अवरोधक नहीं है । यह विश्व उसका कार्य है और उसके प्रकाश के द्वारा यह विश्व प्रकाशित होता है, स्थिर रहता है, और उससे अभिन्न रहता है । यहां तक कि प्रलय की दशा में भी परमात्मा का

प्रकाश ही सभी पर प्रभावशाली है । यह व्यापक तत्त्व है । यह विश्व स्पन्द स्वरूप परमात्मा में स्थित है और उससे अभिन्न है । यह विश्व प्रकाशात्मक शिव के अतिरिक्त अन्य कुछ भी नहीं है ।

इस अद्वैत तत्त्व का निरोध कदापि संभव नहीं है । क्योंकि यह आत्मानुभव सिद्ध है । अतः जो तत्त्व सृष्टि, स्थिति एवं संहार तथा एकत्त्व को अभिव्यक्त करने वाला है । उसका कोई बाधक नहीं है वह अघटन घटनापटीयसी शक्ति है। आचार्य क्षेमराज का कथन है कि योगी को सदैव अपने यथार्थ स्वरूप में समावेश प्राप्त करने के लिए प्रयत्नशील रहना चाहिए चाहे वह कार्य **यत्र स्थितं** या **यस्माच्च निर्गतम्** के स्तर पर हो क्योंकि उस परम तत्त्व का स्वरूप निरोधातीत है ।संक्षोभ का ध्वंश होते ही स्वतः परम पद की प्राप्ति हो जाएगी ।

परमात्मा अपने यथार्थ स्वरूप में निरोध या निषेध का विषय नहीं है क्योंकि अनात्मवादी भी अन्ततोगत्वा यही मानते है कि वह परमतत्त्व प्रकाशस्वरूप एवं नित्य है । यह समस्त विश्व इस स्पन्दतत्त्व की क्रियाशक्ति का सार है । यह बात भी "तादाक्रम्य बलं मन्त्राः सर्वज्ञबलशालिनः" के द्वारा समर्थित है । अर्थात् यथार्थ तत्त्व पर विश्वास करने पर मन्त्र सर्वज्ञत्वादि शक्ति से उपहित हो जाते हैं ।

यहां पर त्रिकदर्शन सत्कार्यवाद का पोषक है फिर भी त्रिकदर्शन का अपना स्वतन्त्र कारणकार्यवाद सिद्धान्त है । जैसे **"यत्पिण्डे तद्ब्रह्माण्डे"** की भांति **"यदन्तः तद्बहिः"** भी एक शाश्वत नियम है । जिस प्रकार एक वट वृक्ष में जड़ अंकुर तना शाखा, पत्ते, पुष्प एवं फल इत्यादि अवस्थित माने जाते हैं । उसी प्रकार अनेकात्म विश्व स्पन्दात्मिका विमर्श भूमिका में अवस्थित है । समस्त प्रमेय पदार्थ विमर्श के रूप अवस्थित है । आन्तर तत्त्व ही बाह्य रूप में आभाषित होता है । जिस प्रकार कुम्भकार कुम्भ की रचना के पूर्व कुम्भ के आकार, गोलाई, आकृति, रंग इत्यादि का आन्तर विमर्शन करता है और उसका यह अन्तर्विमर्श ही बाह्य घट के रूप में प्रकट होता है । कुम्भकार के अन्तर्विमर्श में निःशेष वाच्य पदार्थ उसके अहंविमर्श से अभिन्न रूप में ही तो रहते हैं । जिन्हें वह घट, शराव, सुराही आदि के रूप में आविर्भुत करता है । उसी प्रकार समस्त प्रपंच उस स्पन्द तत्त्व का अपना है।

यथा :

एकोऽहं बहुस्याम् ।

एवं सद्विप्राः बहुधाः वदन्ति ।

एको ब्रह्म द्वितीयो नाऽस्ति ।

इस प्रकार से तन्त्रालोक में कहा गया है कि शून्य स्पन्द एवं प्राण में समस्त विश्व, सारा विस्तार अवस्थित है ।सृष्टि एवं संहार भी एक प्रकार के स्पन्द ही है । स्पन्द अनन्त है । अतः सृष्टि एंव संहार भी

अनन्त है । त्रिकदर्शन में स्पन्दतत्त्व की हो अवस्थाएं बताई गई है । **"अवस्थायुगलं चाऽत्र कार्य कर्तृत्त्वशब्दितम्"**[1] यहां पर दो प्रकार की अवस्था स्वरूप को बताने के लिए "शब्दितम्" कहकर सूचित किया गया है कि इन दोनों अवस्थाओं को समझने के लिए शब्द तो दे दिया परन्तु इनमें वास्तविक भेद नहीं है । यह कार्यरूपा अवस्था प्रकाशमानता से अपनी सत्ता प्राप्त करता है और प्रकाशमान है परमात्मा (स्पन्दस्वरूप) क्योंकि कार्य किसी न किसी कर्त्ता पर निर्भर है । अतः कार्य एवं कर्त्ता तत्त्वतः भिन्न नहीं है । प्रकाशमान कार्य प्रकाशैकस्वभाव से अभिन्न है । कर्तृरूपावस्था नित्य है । नित्योदित है । सर्वावस्थाव्यापक और अविनाशी है । कार्य उदय–व्यय के सम्बन्ध के कारण नश्वर है इनको अन्य प्रकार से सामान्यवस्था एवं विशेषावस्था इन दो प्रकारों से भी व्यक्त किया जाता है।

सामान्यवस्था :

समस्त उपरागों से शून्य, विशुद्ध, चिद्रूप यहीं कर्तृत्व की अवस्था है अहं विमर्श के रूप में स्थित है ।

विशेषावस्था :

विशेषावस्था उस अवस्था का नाम है । जिसमें मूल चिद्रूपता, स्वोत्पन्न अज्ञान के द्वारा स्वस्वरूप को आच्छादित करके देह, प्राण, बुद्धि ज्ञानेन्द्रियाँ, कर्मेन्द्रियां या घट, पट आदि अनन्त जड़ वेद्य वस्तुओं के रूप

1. स्पन्दकारिका, प्रथमनिःस्पन्दः, कारिका–14

में अवभाषित होती है । यही है कार्यता, भोग्यता, वेद्यता एवं प्रमेयता की अवस्था ।

स्पन्द तत्त्व का उदय :

यत्र–यत्र यदा चेन सर्वशक्तिलयो भवेत्

स्फुटःस्यात् स्पन्दतत्त्वस्य तत्र–तत्र तदोदयः

जहां जब जिस अवस्था में समस्त शक्तियों का व्यय हो जाता है और मन केवल अनन्य रूप से एक चित्त वृत्ति परायण हो जाता है । उस अवस्था में आत्मस्वस्वरूप स्पन्द स्पष्ट्तया स्थित रहता है । यथा क्रोधावेश में, भयावेश में, प्रेमावेश में हर्षावेश में सुस्पष्ट रूप से स्पन्द तत्त्व दृष्टिगोचर होता है ।

शक्तिपात् की दृढ़ता से बहिर्मुखी स्पन्दप्रवाह को योगी कूर्मागंसंकोचवत् अपने भीतर समेटकर अन्तर्मुखी होकर विशिष्ट एकाग्रतानिष्ठ क्षण पर स्थिर रहने की क्षमता को प्राप्त कर लेता है ।

इस प्रकार से त्रिकदर्शन में स्पन्दतत्त्व को नित्य सर्वकर्तृत्व, सर्वनियन्ता, प्रकाशस्वरूप, जानकर अन्ततोगत्वा साधक स्वात्मस्वरूप की प्रतिभिज्ञा करने स्वयं अपने स्वरूप में समाविष्ट हो जाता है । एवं पुनः कभी भी सांसारिक दशा को प्राप्त नहीं होता ।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. शिवसूत्रम्, क्षेमराजकृतव्याख्यालोकेन

2. तन्त्रसार, अभिनवगुप्तपाद

3. स्पन्दकारिका, भट्टकल्लवृत्तिसहिता